

ज्ञान-विज्ञान योग: एक वर्णनात्मक अध्ययन

डॉ. सानन्द कुमार गौतम¹, डॉ. आर. एस. मिश्रा²

¹एसोसिएट प्रोफेसर, एकेएस. विश्वविद्यालय सतना (म.प्र.)

Email: sanandgautam1964[at]gmail.com

²प्रोफेसर, एकेएस. विश्वविद्यालय सतना (म.प्र.)

Email: drrs2050[at]gmail.com

सारांश: श्रीमद्भगवद्गीता भारतीय दार्शनिक एवं आध्यात्मिक परम्परा का एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसके अठारह अध्यायों में मानव जीवन से संबंधित विभिन्न दार्शनिक, नैतिक, आध्यात्मिक एवं व्यावहारिक प्रश्नों का समाधान प्रस्तुत किया गया है। गीता का सप्तम अध्याय “ज्ञान-विज्ञान योग” के नाम से जाना जाता है। इस अध्याय में भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को परमात्मा के स्वरूप, प्रकृति के विभिन्न रूपों, जीवात्मा, भक्ति, माया, त्रिगुण, ईश्वर की सर्वव्यापकता तथा ईश्वर-प्राप्ति के साधनों का विवेचन करते हैं। ‘ज्ञान’ का संबंध ईश्वर एवं जगत के स्वरूप की बौद्धिक समझ से है, जबकि ‘विज्ञान’ उस ज्ञान की अनुभूति अथवा आत्मानुभव से संबंधित है। इस प्रकार यह अध्याय केवल ईश्वर के संबंध में जानकारी प्राप्त करने तक सीमित नहीं रहता, बल्कि उस ज्ञान को जीवनानुभव एवं साधना में परिणत करने की प्रेरणा देता है। ज्ञान-विज्ञान योग में श्रीकृष्ण बताते हैं कि सम्पूर्ण जगत उनकी प्रकृति से निर्मित है और वे ही उसके आधार हैं। प्रकृति के आठ भौतिक रूप भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि तथा अहंकार-उद्वेग की अपरा प्रकृति हैं, जबकि जीवात्मा उनकी परा प्रकृति कही गई है। ईश्वर संसार के प्रत्येक पदार्थ और प्रत्येक जीव में किसी न किसी रूप में विद्यमान हैं। जल का स्वाद, सूर्य और चन्द्रमा का प्रकाश, अग्नि की ऊष्मा, पृथ्वी की सुगन्ध, बुद्धिमानों की बुद्धि और शक्तिशाली व्यक्तियों की शक्ति में ईश्वर की अभिव्यक्ति देखी जाती है। अध्याय में यह भी बताया गया है कि सत्त्व, रजस और तमस नामक तीन गुणों से निर्मित माया के कारण मनुष्य ईश्वर के वास्तविक स्वरूप को पहचान नहीं पाता। चार प्रकार के भक्त-आर्त, अर्थार्थी, जिज्ञासु और ज्ञानी-का उल्लेख करते हुए श्रीकृष्ण ज्ञानी भक्त को विशेष रूप से प्रिय बताते हैं। इस प्रकार ज्ञान-विज्ञान योग ज्ञान, भक्ति, आत्मबोध एवं जीवन-दृष्टि का समन्वित दर्शन प्रस्तुत करता है।

प्रमुख शब्द: ज्ञान-विज्ञान योग, श्रीमद्भगवद्गीता, श्रीकृष्ण, प्रकृति, जीवात्मा, भक्ति, माया, त्रिगुण, ज्ञानी भक्त, ईश्वर।

1. प्रस्तावना

भारतीय दर्शन में श्रीमद्भगवद्गीता का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यह केवल धार्मिक ग्रन्थ नहीं, बल्कि मानव जीवन की जटिलताओं, कर्तव्य, ज्ञान, कर्म, भक्ति, आत्मा, परमात्मा और मोक्ष से संबंधित प्रश्नों पर विचार प्रस्तुत करने वाला दार्शनिक ग्रन्थ है। गीता का उपदेश उस समय दिया गया जब अर्जुन युद्धभूमि में अपने कर्तव्य को लेकर मानसिक द्वंद्व में थे। श्रीकृष्ण ने अर्जुन के माध्यम से सम्पूर्ण मानवता को जीवन के विभिन्न पक्षों को समझने की प्रेरणा दी।

गीता का सप्तम अध्याय “ज्ञान-विज्ञान योग” कहलाता है। इस अध्याय में भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को अपने वास्तविक स्वरूप को समझने का मार्ग बताते हैं। यहाँ ईश्वर को केवल किसी एक सीमित रूप में देखने के स्थान पर सम्पूर्ण जगत के आधार एवं नियामक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। श्रीकृष्ण बताते हैं कि संसार की समस्त वस्तुएँ उनकी प्रकृति से उत्पन्न हैं और जीव भी उनकी ही शक्ति का अंश है।

ज्ञान-विज्ञान योग का मूल उद्देश्य मनुष्य को ईश्वर के संबंध में केवल सैद्धांतिक जानकारी देना नहीं है, बल्कि उसे ईश्वर के वास्तविक स्वरूप की अनुभूति की दिशा में ले जाना है। इसलिए इस अध्याय में ज्ञान और विज्ञान दोनों को महत्व दिया गया है। ज्ञान से सत्य का बौद्धिक बोध होता है और विज्ञान से उसी सत्य की अनुभूति होती है।

2. अध्ययन के उद्देश्य

प्रस्तुत वर्णनात्मक अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

- 1) श्रीमद्भगवद्गीता के सप्तम अध्याय ‘ज्ञान-विज्ञान योग’ का अध्ययन करना।
- 2) ज्ञान एवं विज्ञान की अवधारणा को स्पष्ट करना।
- 3) भगवान श्रीकृष्ण द्वारा वर्णित प्रकृति के स्वरूप को समझना।
- 4) परा एवं अपरा प्रकृति की अवधारणा का विवेचन करना।
- 5) ईश्वर की सर्वव्यापकता एवं सर्वाधार स्वरूप को समझना।
- 6) माया तथा त्रिगुणों के प्रभाव का अध्ययन करना।
- 7) चार प्रकार के भक्तों की अवधारणा को स्पष्ट करना।
- 8) ज्ञानी भक्त की श्रेष्ठता का अध्ययन करना।
- 9) भक्ति एवं ज्ञान के पारस्परिक संबंध को समझना।
- 10) ज्ञान-विज्ञान योग की जीवनोपयोगिता को स्पष्ट करना।

3. अध्ययन की विधि

प्रस्तुत अध्ययन “वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक विधि” पर आधारित है। इसमें श्रीमद्भगवद्गीता के सप्तम अध्याय में वर्णित प्रमुख दार्शनिक एवं आध्यात्मिक अवधारणाओं को क्रमबद्ध रूप से समझने का प्रयास किया गया है। अध्ययन में ज्ञान, विज्ञान, प्रकृति, जीव, ईश्वर, माया, त्रिगुण, भक्ति तथा ईश्वर-प्राप्ति जैसे विषयों को प्रमुख आधार बनाया गया है। प्रस्तुत विवेचन में अध्याय के भावार्थ को सरल एवं शोधपरक भाषा में व्यवस्थित किया गया है।

4. ज्ञान और विज्ञान की अवधारणा

ज्ञान-विज्ञान योग का प्रारम्भ ही ज्ञान एवं विज्ञान के महत्व से होता है। श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि यदि मनुष्य अपने मन को परमात्मा में लगाकर योग का अभ्यास करे तो वह परमात्मा को पूर्ण रूप से जान सकता है। यहाँ ‘ज्ञान’ केवल सामान्य सूचना या किसी विषय के संबंध में जानकारी नहीं है। ज्ञान का आशय ईश्वर, प्रकृति

और जीव के वास्तविक संबंध को समझना है। इसके विपरीत 'विज्ञान' उस ज्ञान की गहरी अनुभूति है। कोई व्यक्ति ईश्वर के संबंध में बहुत कुछ पढ़ सकता है, ईश्वर के स्वरूप के विषय में अनेक बातें जान सकता है, परन्तु जब तक वह उस सत्य को अपने जीवन में अनुभव नहीं करता, तब तक उसका ज्ञान पूर्ण नहीं माना जा सकता। इस प्रकार ज्ञान और विज्ञान एक-दूसरे के पूरक हैं।

ज्ञान व्यक्ति को सत्य की दिशा दिखाता है, जबकि विज्ञान उसे उस सत्य का अनुभव कराने में सहायता करता है। इसलिए ज्ञान-विज्ञान योग में बौद्धिक समझ तथा आध्यात्मिक अनुभूति दोनों को महत्व दिया गया है।

5. ईश्वर के ज्ञान की दुर्लभता

श्रीकृष्ण के अनुसार संसार में अनेक लोग ईश्वर को जानने का प्रयास करते हैं, किन्तु बहुत कम लोग ईश्वर के वास्तविक स्वरूप को समझ पाते हैं। इसका प्रमुख कारण मनुष्य का सांसारिक मोह, इच्छाएँ, आसक्ति और भ्रम है। मनुष्य सामान्यतः

बाह्य जगत की वस्तुओं में सुख खोजता है और उन्हीं को जीवन का अंतिम लक्ष्य मान लेता है।

ईश्वर को जानने के लिए केवल बाहरी साधनों की आवश्यकता नहीं है, बल्कि मन की शुद्धता, श्रद्धा, भक्ति और निरन्तर साधना आवश्यक है। जो व्यक्ति अपने मन को

एकाग्र करता है, अच्छे कर्म करता है और ईश्वर के प्रति समर्पित रहता है, उसके लिए ईश्वर के वास्तविक स्वरूप को समझना अपेक्षाकृत सरल हो जाता है।

इस दृष्टि से ज्ञान-विज्ञान योग मनुष्य को बाह्य उपलब्धियों के साथ-साथ आन्तरिक विकास की ओर भी प्रेरित करता है।

6. भगवान की अपरा प्रकृति : प्रकृति के आठ रूप

ज्ञान-विज्ञान योग में भगवान श्रीकृष्ण अपनी प्रकृति के आठ रूपों का उल्लेख करते हैं। ये हैं—

“भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार।”

इनमें प्रथम पाँच तत्व भौतिक जगत से संबंधित हैं, जबकि मन, बुद्धि और अहंकार सूक्ष्म प्रकृति के रूप माने जाते हैं। संसार में दिखाई देने वाली विभिन्न वस्तुएँ इन्हीं प्रकृति-तत्त्वों से संबंधित हैं।

भूमि स्थूलता एवं आधार का प्रतीक है, जल जीवन का आधार है, अग्नि ऊर्जा एवं परिवर्तन का प्रतीक है, वायु गति एवं जीवन-प्रवाह से संबंधित है और आकाश सभी को स्थान प्रदान करता है। इसी प्रकार मन विचार एवं भावनाओं का, बुद्धि विवेक का और अहंकार 'मैं' की भावना का प्रतिनिधित्व करता है।

इस प्रकार श्रीकृष्ण प्रकृति को केवल बाहरी पदार्थ के रूप में नहीं देखते, बल्कि मनुष्य की आन्तरिक मानसिक संरचना को भी प्रकृति का हिस्सा बताते हैं।

7. परा प्रकृति और जीवात्मा

श्रीकृष्ण अपरा प्रकृति के अतिरिक्त अपनी दूसरी प्रकृति का भी वर्णन करते हैं, जिसे परा प्रकृति कहा गया है। यह जीव या जीवात्मा से संबंधित है। संसार में पेड़-पौधे, पशु-पक्षी तथा मनुष्य आदि सभी जीवित प्राणी इसी चेतन शक्ति से संचालित होते हैं।

इस प्रकार संसार में दो प्रमुख स्तर दिखाई देते हैं—एक भौतिक और दूसरा चेतन।

भौतिक—प्रति शरीर एवं बाहरी संसार से संबंधित है, जबकि चेतन प्रकृति जीव के जीवन एवं अनुभव से संबंधित है।

इन दोनों प्रकृतियों का आधार भगवान को माना गया है। इस विचार के माध्यम से गीता संसार में सभी जीवों के प्रति सम्मान की भावना उत्पन्न करती है। यदि प्रत्येक जीव में ईश्वर की शक्ति का अंश स्वीकार किया जाए, तो मनुष्य के भीतर करुणा, सह-अस्तित्व और नैतिकता की भावना विकसित हो सकती है।

8. ईश्वर सर्वाधार के रूप में

ज्ञान-विज्ञान योग में भगवान श्रीकृष्ण स्वयं को सम्पूर्ण संसार का आधार बताते हैं। वे स्पष्ट करते हैं कि संसार की प्रत्येक वस्तु उनकी शक्ति पर आधारित है। इस तथ्य को समझाने के लिए मोतियों की माला का उदाहरण दिया गया है। जिस प्रकार माला के मोतियों को एक धागा जोड़कर रखता है, लेकिन धागा सामान्यतः दिखाई नहीं देता, उसी प्रकार सम्पूर्ण जगत ईश्वर पर आधारित है, परन्तु ईश्वर की उपस्थिति सा मान्य दृष्टि से दिखाई नहीं देती।

यह उदाहरण ईश्वर की सर्वव्यापकता एवं अदृश्य आधार-शक्ति को समझाने में अत्यन्त उपयोगी है। संसार की विविधता के पीछे एक मूल शक्ति का अस्तित्व स्वीकार किया गया है। इस प्रकार अनेकता में एकता की भावना ज्ञान-विज्ञान योग की प्रमुख विशेषता है।

9. प्रकृति में ईश्वर की अभिव्यक्ति

ज्ञान-विज्ञान योग की विशेषता यह है कि श्रीकृष्ण ईश्वर को किसी दूरस्थ सत्ता के रूप में प्रस्तुत नहीं करते। वे बताते हैं कि संसार में जो कुछ भी श्रेष्ठ, जीवनदायी और आकर्षक है, उसमें ईश्वर की अभिव्यक्ति देखी जा सकती है।

जल का स्वाद, सूर्य और चन्द्रमा का प्रकाश, पृथ्वी की सुगन्ध, अग्नि की ऊष्मा, जीवों में जीवनशक्ति, बुद्धिमानों की बुद्धि और शक्तिशाली व्यक्तियों की शक्ति को भगवान अपनी अभिव्यक्ति के रूप में बताते हैं।

इस विचार का व्यावहारिक अर्थ यह है कि मनुष्य यदि अपने चारों ओर की प्रकृति और जीवन को संवेदनशील दृष्टि से देखे तो उसे आध्यात्मिक अनुभूति प्राप्त हो सकती है। प्रकृति के प्रति सम्मान तथा जीवन के प्रति आदर इसी दृष्टि से विकसित किया जा सकता है।

10. ईश्वर सभी शक्तियों के मूल स्रोत

श्रीकृष्ण बताते हैं कि मनुष्य के भीतर जो बुद्धि, साहस, ऊर्जा और शक्ति दिखाई देती है, उसका मूल स्रोत परमात्मा है। मनुष्य को

अपनी क्षमताओं का उपयोग उचित एवं कल्याणकारी कार्यों में करना चाहिए।

ज्ञान-विज्ञान योग की दृष्टि से शक्ति अपने आप में न तो अच्छी है और न बुरीय उसका उपयोग उसे सार्थक या अनैतिक बनाता है। इसलिए व्यक्ति को अपनी बुद्धि, शक्ति एवं ऊर्जा का उपयोग मानव-कल्याण तथा उचित कार्यों के लिए करना चाहिए।

इस विचार से व्यक्ति में विनम्रता का विकास भी होता है। यदि मनुष्य अपनी सफलता और क्षमता को केवल अपना निजी अधिकार न मानकर किसी व्यापक शक्ति की देन माने, तो उसमें अहंकार की सम्भावना कम हो सकती है।

11. त्रिगुण और माया

ज्ञान-विज्ञान योग में माया तथा प्रकृति के तीन गुणों—“सत्त्व, रजस और तमस”—का उल्लेख मिलता है। ये तीन गुण मनुष्य के विचार, व्यवहार और जीवन-दृष्टि को प्रभावित करते हैं।

उल्लेख मिलता है। ये तीन गुण मनुष्य के विचार, व्यवहार और जीवन-दृष्टि को प्रभावित करते हैं।

सत्त्व से प्रकाश, शुद्धता और विवेक की भावना जुड़ी है। रजस सक्रियता, इच्छा और आसक्ति से संबंधित है, जबकि तमस अज्ञान, जड़ता और भ्रम से संबंधित माना गया है। मनुष्य इन गुणों के प्रभाव में आकर संसार को उसी दृष्टि से देखने लगता है।

इन गुणों के कारण व्यक्ति ईश्वर के वास्तविक स्वरूप को पहचानने में कठिनाई अनुभव करता है। सांसारिक इच्छाएँ और मोह उसकी चेतना को बाहरी वस्तुओं की ओर आकर्षित करते रहते हैं।

श्रीकृष्ण बताते हैं कि यह माया अत्यन्त शक्तिशाली है, परन्तु जो व्यक्ति ईश्वर की शरण ग्रहण करता है, उसके लिए इस माया से ऊपर उठना सम्भव है। इस प्रकार अध्याय में आत्मिक उन्नति के लिए ईश्वर-समर्पण को महत्वपूर्ण साधन माना गया है।

12. ईश्वर से विमुख होने के कारण

मनुष्य ईश्वर को क्यों नहीं पहचान पाता
कृपया ज्ञान-विज्ञान योग का एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। इसके पीछे अज्ञान, मोह, इच्छा, द्वेष, अहंकार तथा सांसारिक आकर्षण जैसे कारण बताए गए हैं।

मनुष्य अपनी इच्छाओं की पूर्ति को जीवन का प्रमुख लक्ष्य बना लेता है। जब इच्छाएँ पूरी होती हैं तो वह प्रसन्न होता है और जब इच्छाएँ पूरी नहीं होतीं तो दुःखी या क्रोधित होता है। इस प्रकार उसका मन लगातार बाहरी परिस्थिति में तयों से प्रभावित होता रहता है।

लालच, क्रोध, आलस्य और मोह जैसे भाव मनुष्य के विवेक को प्रभावित करते हैं। परिणामतः वह सत्य को समझने की क्षमता खो देता है। इसलिए अध्याय में मन की शुद्धता एवं ईश्वर के प्रति समर्पण को विशेष महत्व दिया गया है।

13. चार प्रकार के भक्त

ज्ञान-विज्ञान योग में श्री ज्ञान-विज्ञान योग में श्रीकृष्ण चार प्रकार के भक्तों का वर्णन करते हैं—

1. “आर्त”

वह जो दुःख अथवा संकट में ईश्वर को स्मरण करता है।

2. “अर्थार्थी”

वह जो किसी इच्छा या भौतिक लाभ की प्राप्ति के लिए ईश्वर की उपासना करता है।

3. “जिज्ञासु”

वह जो ईश्वर एवं सत्य को जानने की इच्छा रखता है।

4. “ज्ञानी”

वह जो ईश्वर को समझकर, श्रद्धा एवं प्रेम से उनकी उपासना करता है। इन चारों प्रकार के भक्तों को ईश्वर की ओर उन्मुख माना गया है। इससे यह संकेत मिलता है कि मनुष्य की आध्यात्मिक यात्रा अलग-अलग परिस्थितियों से प्रारम्भ हो सकती है। कोई दुःख में ईश्वर को याद करता है, कोई इच्छा की पूर्ति के लिए, कोई ज्ञान की खोज में और कोई निष्काम प्रेम के कारण।

इस प्रकार भक्ति के मार्ग में प्रारम्भिक प्रेरणाएँ अलग हो सकती हैं, परन्तु अंतिम लक्ष्य ईश्वर के वास्तविक स्वरूप की ओर बढ़ना है।

14. ज्ञानी भक्त की श्रेष्ठता

श्रीकृष्ण चारों प्रकार के भक्तों में ज्ञानी भक्त को विशेष प्रिय बताते हैं। ज्ञानी भक्त ईश्वर को केवल किसी आवश्यकता की पूर्ति के साधन के रूप में नहीं देखता, बल्कि ईश्वर को अपने जीवन का परम आधार मानता है। ज्ञानी भक्त की भक्ति में प्रेम, श्रद्धा और ज्ञान का समन्वय होता है। वह ईश्वर को जानने का प्रयास करता है और ज्ञान प्राप्त होने के बाद उस ज्ञान को अपने जीवन में उतारता है। उसके लिए ईश्वर से प्राप्त होने वाला कोई भी भौतिक भा लाभ अंतिम लक्ष्य नहीं होता।

इस प्रकार ज्ञान-विज्ञान योग में ज्ञान और भक्ति के बीच कोई विरोध नहीं दिखाई देता। बल्कि दोनों को एक-दूसरे का पूरक माना गया है। सच्चा ज्ञान भक्ति को गहरा करता है और सच्ची भक्ति ज्ञान को अनुभव में परिवर्तित करती है।

15. अनेक देवताओं की उपासना और श्रद्धा

ज्ञान-विज्ञान योग में विभिन्न देवताओं की उपासना करने वाले लोगों की श्रद्धा का भी उल्लेख मिलता है। श्रीकृष्ण बताते हैं कि मनुष्य अपनी विशेष इच्छाओं की पूर्ति के लिए विभिन्न देवताओं की उपासना कर सकता है। उसकी श्रद्धा जिस रूप में स्थिर होती है, वह उसी रूप की उपासना करता है।

यहाँ एक महत्वपूर्ण बात यह है कि मनुष्य की श्रद्धा को पूर्णतः अस्वीकार नहीं किया गया है। व्यक्ति जिस देवता के प्रति श्रद्धा रखता है, उसी श्रद्धा के माध्यम से वह अपनी धार्मिक भावना को व्यक्त करता है। तथापि, अध्याय में यह विचार प्रस्तुत किया गया है कि सीमित इच्छाओं से प्राप्त होने वाले फल भी सीमित और अस्थायी होते हैं।

इसके विपरीत परमात्मा की प्राप्ति को स्थायी एवं उच्चतर आध्यात्मिक लक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

16. ईश्वर के वास्तविक स्वरूप को समझने की कठिनाई

मनुष्य के लिए ईश्वर को समझना कठिन इसलिए है क्योंकि वह ईश्वर को सामान्य भौतिक वस्तुओं की तरह देखने का प्रयास करता है। ईश्वर का स्वरूप अनन्त एवं व्यापक माना गया है। इसलिए उन्हें केवल दृश्य रूप तक सीमित नहीं किया जा सकता।

श्रीकृष्ण बताते हैं कि ईश्वर जन्मरहित एवं सर्वव्यापक हैं। वे प्रत्येक जीव के भीतर विद्यमान हैं, फिर भी सांसारिक मोह के कारण मनुष्य उन्हें पहचान नहीं पाता। यह विचार मनुष्य को बाहरी रूपों से आगे बढ़कर आन्तरिक चेतना की ओर देखने के लिए प्रेरित करता है।

17. इच्छा और द्वेष: ईश्वर-ज्ञान में बाधा

ज्ञान-विज्ञान योग में इच्छा और द्वेष को मनुष्य की चेतना को प्रभावित करने वाले प्रमुख तत्वों के रूप में देखा गया है। मनुष्य को जो वस्तु अच्छी लगती है, उसकी ओर वह आकर्षित होता है और जिसे वह अप्रिय मानता है, उससे द्वेष करता है। पसन्द और नापसन्द की यह निरन्तर प्रक्रिया मनुष्य के मन को अस्थिर रखती है। वह वस्तुओं और परिस्थितियों को निष्पक्ष रूप से देखने की क्षमता खो सकता है। इसलिए ईश्वर की ओर बढ़ने के लिए मनुष्य को अपनी इच्छाओं और द्वेषों के प्रति सजग होना आवश्यक है। मन की शुद्धता एवं संतुलन आध्यात्मिक विकास के लिए आवश्यक आधार बनते हैं।

18. सत्कर्म और ईश्वर-प्राप्ति

श्रीकृष्ण के अनुसार जो व्यक्ति अच्छे कर्म करता है और जिसका मन शुद्ध होता है, वह धीरे-धीरे ईश्वर की ओर अग्रसर होता है। सत्कर्म मनुष्य के अंतःकरण को निर्मल बनाने में सहायता करते हैं। सत्कर्म का अर्थ केवल धार्मिक कर्मकाण्ड नहीं, बल्कि जीवन में उचित, नैतिक एवं कल्याणकारी व्यवहार से भी लिया जा सकता है। जब व्यक्ति अपने कर्मों में सत्य, ईमानदारी, करुणा एवं सद्भाव को अपनाता है, तब उसके भीतर आत्मिक विकास की सम्भावना बढ़ती है। इस प्रकार ज्ञान-विज्ञान योग में आध्यात्मिकता को व्यावहारिक जीवन से जोड़ा गया है।

19. जन्म-मरण से मुक्ति की अवधारणा

ज्ञान-विज्ञान योग में मनुष्य के सांसारिक आवागमन से मुक्ति की बात भी की गई है। जो व्यक्ति ईश्वर को अपना आधार मानता है और अपने मन को भगवान में स्थिर करता है, वह जीवन के अंतिम सत्य को समझने की दिशा में आगे बढ़ता है। जन्म और मृत्यु को केवल भौतिक घटनाओं के रूप में न देखकर आध्यात्मिक दृष्टि से देखने की प्रेरणा मिलती है। मनुष्य का वास्तविक लक्ष्य केवल सांसारिक उपलब्धियों को प्राप्त करना नहीं, बल्कि अपने अस्तित्व के मूल स्वरूप को पहचानना भी है।

इस प्रकार मोक्ष अथवा मुक्ति को मनुष्य की सर्वोच्च आध्यात्मिक उपलब्धि के रूप में देखा गया है।

20. ज्ञान-विज्ञान योग का दार्शनिक महत्त्व

ज्ञान-विज्ञान योग का दार्शनिक महत्त्व अनेक स्तरों पर दिखाई देता है। प्रथम, यह ईश्वर और जगत के संबंध को स्पष्ट करता है। संसार को ईश्वर से पृथक् न मानकर उन की प्रकृति के रूप में देखा गया है।

द्वितीय, इसमें चेतन एवं भौतिक प्रकृति के संबंध का विवेचन किया गया है। तृतीय, मनुष्य की मानसिक अवस्था पर इच्छा, द्वेष और माया के प्रभाव को समझाया गया है। चतुर्थ, भक्ति को केवल भावनात्मक क्रिया न मानकर ज्ञान से जोड़ा गया है।

इस अध्याय का एक महत्वपूर्ण संदेश यह भी है कि ईश्वर की अनुभूति केवल बाहरी संसार से विमुख होकर नहीं, बल्कि संसार में ईश्वर की उपस्थिति को पहचानकर भी की जा सकती है।

21. ज्ञान-विज्ञान योग की समकालीन प्रासंगिकता

वर्तमान समय में मनुष्य वैज्ञानिक, तकनीकी एवं आर्थिक रूप से प्रगति कर रहा है, परन्तु मानसिक तनाव, असंतोष, प्रतिस्पर्धा, भय और असुरक्षा जैसी समस्याएँ भी बढ़ रही हैं। ऐसी स्थिति में ज्ञान-विज्ञान योग की शिक्षाएँ व्यक्ति को आन्तरिक संतुलन की ओर प्रेरित कर सकती हैं।

आज व्यक्ति अपनी उपलब्धियों को ही अपनी पहचान मानने लगता है। इससे अहंकार, असंतोष और तनाव उत्पन्न हो सकता है। ज्ञान-विज्ञान योग यह दृष्टि देता है कि मनुष्य की बुद्धि, शक्ति और क्षमता किसी व्यापक शक्ति का हिस्सा हैं। यह दृष्टिकोण विनम्रता और संतुलन विकसित कर सकता है।

इसी प्रकार अनियंत्रित इच्छाएँ व्यक्ति को लगातार असंतुष्ट बनाए रखती हैं। अध्याय में इच्छा, मोह और माया के प्रभाव को समझाकर व्यक्ति को आत्मचिन्तन की ओर प्रेरित किया गया है।

प्रकृति में ईश्वर की उपस्थिति का विचार पर्यावरण के प्रति सम्मान की भावना भी विकसित कर सकता है। यदि पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और समस्त जीवों को ईश्वर की अभिव्यक्ति माना जाए तो प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण की नैतिक चेतना मजबूत हो सकती है।

22. ज्ञान-विज्ञान योग का आलोचनात्मक विवेचन

ज्ञान-विज्ञान योग का अध्ययन केवल श्रद्धा की दृष्टि से नहीं, बल्कि आलोचनात्मक एवं दार्शनिक दृष्टि से भी किया जा सकता है। इस अध्याय की प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें ज्ञान और भक्ति के बीच समन्वय स्थापित किया गया है। ईश्वर को जानने के लिए केवल बौद्धिक ज्ञान पर्याप्त नहीं माना गया, बल्कि अनुभव एवं आस्था को भी आवश्यक माना गया है।

हालाँकि आधुनिक ज्ञानमीमांसा की दृष्टि से ईश्वर की सर्वव्यापकता, आत्मा की प्र — ति अथवा माया जैसी अवधारणाओं को वैज्ञानिक प्रमाणों के आधार पर उसी प्रकार सिद्ध नहीं किया जा सकता जैसे भौतिक घटनाओं को किया जाता है। ये मूलतः

दार्शनिक एवं आध्यात्मिक अवधारणाएँ हैं। अतः इनका मूल्यांकन उनके आध्यात्मिक, नैतिक एवं जीवन-दृष्टिगत प्रभावों आधार पर भी किया जाना चाहिए। इसी प्रकार चार प्रकार के भक्तों की

अवधारणा मनुष्य की विभिन्न मानसिक अवस्थाओं को समझने का अवसर देती है। व्यक्ति दुःख, इच्छा, जिज्ञासा अथवा ज्ञान की खोज से आध्यात्मिक यात्रा प्रारम्भ कर सकता है। यहाँ ज्ञानी भक्त की श्रेष्ठता इस बात को स्पष्ट करती है कि भक्ति का उच्चतम स्वरूप स्वार्थरहित एवं ज्ञानपरक होना चाहिए।

माया और त्रिगुण की अवधारणा को आधुनिक संदर्भ में मनुष्य की मानसिक प्रवृत्तियों एवं व्यवहारगत अवस्थाओं के प्रतीकात्मक रूप में भी समझा जा सकता है। मनुष्य की इच्छाएँ, भावनाएँ और सामाजिक परिस्थितियाँ उसके निर्णयों को प्रभावित करती हैं। इसलिए आत्मचिन्तन एवं विवेक आज भी महत्वपूर्ण हैं।

इस दृष्टि से ज्ञान-विज्ञान योग का मूल्य केवल धार्मिक आस्था तक सीमित नहीं है, बल्कि यह मनुष्य को आत्मबोध, नैतिकता, संयम, विनम्रता और व्यापक दृष्टिकोण की ओर प्रेरित करता है।

23. ज्ञान और भक्ति का समन्वय

ज्ञान-विज्ञान योग का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष ज्ञान और भक्ति का समन्वय है। सामान्यतः ज्ञान को बौद्धिक और भक्ति को भावनात्मक मार्ग माना जाता है, किन्तु इस अध्याय में दोनों के बीच हरा ग संबंध स्थापित किया गया है।

ज्ञान व्यक्ति को यह समझने में सहायता करता है कि ईश्वर क्या है, प्रकृति क्या है और जीव का वास्तविक स्वरूप क्या है। भक्ति व्यक्ति को उस सत्य के प्रति प्रेम, श्रद्धा और समर्पण प्रदान करती है। जब ज्ञान और भक्ति का समन्वय होता है, तब व्यक्ति का आध्यात्मिक विकास अधिक गहरा हो सकता है।

इस प्रकार ज्ञान-विज्ञान योग का संदेश है कि केवल जानना पर्याप्त नहीं है और केवल भावनात्मक भक्ति भी पर्याप्त नहीं है। ज्ञान को अनुभव में और अनुभव को जीवन के आचरण में परिणत करना आवश्यक है।

24. प्रमुख निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन के आधार पर निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त होते हैं—

- 1) श्रीमद्भगवद्गीता का सप्तम अध्याय ज्ञान-विज्ञान योग ज्ञान और अनुभूति का समन्वित दर्शन प्रस्तुत करता है।
- 2) ज्ञान ईश्वर एवं जगत के संबंध की बौद्धिक समझ है, जबकि विज्ञान उस सत्य की गहन अनुभूति है।
- 3) भगवान श्रीकृष्ण सम्पूर्ण जगत को अपनी प्रकृति की अभिव्यक्ति बताते हैं।
- 4) भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार प्रकृति के आठ रूप हैं।
- 5) जीवात्मा को भगवान की चेतन प्रकृति के रूप में समझाया गया है।
- 6) ईश्वर सम्पूर्ण जगत के आधार एवं नियामक हैं।
- 7) प्रकृति की श्रेष्ठ एवं जीवनदायी शक्तियों में ईश्वर की उपस्थिति मानी गई है।
- 8) सत्त्व, रजस और तमस के प्रभाव से मनुष्य ईश्वर के वास्तविक स्वरूप को पहचानने में कठिनाई अनुभव करता है।
- 9) इच्छा, द्वेष, मोह और अज्ञान ईश्वर-ज्ञान की प्रमुख बाधाएँ हैं।
- 10) आर्त, अर्थार्थी, जिज्ञासु और ज्ञानी चार प्रकार के भक्त बताए गए हैं।

- 11) ज्ञानी भक्त को विशेष रूप से श्रेष्ठ माना गया है क्योंकि उसकी भक्ति ज्ञान एवं निष्काम प्रेम पर आधारित होती है।
- 12) विभिन्न देवताओं की उपासना से प्राप्त फल को सीमित एवं अस्थायी तथा परमात्मा की प्राप्ति को उच्चतर लक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किया गया है।
- 13) सत्कर्म, श्रद्धा, भक्ति और मन की शुद्धता ईश्वर-ज्ञान की दिशा में सहायक हैं।
- 14) ज्ञान-विज्ञान योग आधुनिक जीवन में आत्मचिन्तन, मानसिक संतुलन, नैतिकता और आध्यात्मिक चेतना के विकास में उपयोगी हो सकता है।

25. उपसंहार

अन्ततः कहा जा सकता है कि श्रीमद्भगवद्गीता का ‘‘ज्ञान-विज्ञान योग’’ मनुष्य को ईश्वर, प्रकृति और स्वयं के वास्तविक स्वरूप को समझने की दिशा में प्रेरित करने वाला महत्वपूर्ण अध्याय है। इस अध्याय में भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को समझाया कि सम्पूर्ण संसार उनकी प्रकृति से संचालित है और जीवात्मा भी उनकी चेतन शक्ति

से संबंधित है। संसार में जो कुछ भी जीवनदायी, ज्ञानमय, शक्तिशाली और श्रेष्ठ है, उसमें ईश्वर की अभिव्यक्ति देखी जा सकती है। अध्याय का प्रमुख संदेश यह है कि ईश्वर को केवल बाहरी रूप में खोजने के स्थान पर सम्पूर्ण जगत में उनकी उपस्थिति को पहचानना चाहिए। मनुष्य की इच्छाएँ, द्वेष, मोह और अज्ञान उसे ईश्वर के वास्तविक स्वरूप से दूर करते हैं। इसके विपरीत सत्कर्म, श्रद्धा, ज्ञान और भक्ति उसे परम सत्य की ओर ले जाते हैं।

ज्ञान-विज्ञान योग में भक्ति का सर्वोच्च रूप उस ज्ञानी भक्त में दिखाई देता है जो ईश्वर को किसी सांसारिक लाभ की प्राप्ति का साधन न मानकर अपने जीवन का परम आधार मानता है। इस प्रकार ज्ञान और भक्ति का समन्वय इस अध्याय की मूल विशेषता है।

वर्तमान समय में भी इस अध्याय की प्रासंगिकता बनी हुई है। भौतिक प्रगति के साथ बढ़ती इच्छाओं, तनाव, असंतोष और मानसिक अस्थिरता के बीच व्यक्ति को अपने जीवन के आन्तरिक पक्ष पर विचार करने की आवश्यकता है। ज्ञान-विज्ञान योग उसे आत्मचिन्तन, संयम, श्रद्धा, विनम्रता, नैतिक आचरण और व्यापक जीवन-दृष्टि की प्रेरणा देता है।

इस प्रकार ज्ञान-विज्ञान योग केवल ईश्वर के स्वरूप का वर्णन करने वाला अध्याय नहीं है, बल्कि यह ‘‘ज्ञान को अनुभव में, भक्ति को आचरण में और आध्यात्मिक चेतना को जीवन-मूल्यों में रूपांतरित करने की प्रेरणा देने वाला जीवन-दर्शन’’ है। यही इसकी स्थायी दार्शनिक एवं मानवीय प्रासंगिकता है।

संदर्भ

- [1] व्यास, वेदव्यास — ‘श्रीमद्भगवद्गीता’।
- [2] श्रीमद्भगवद्गीता — अध्याय 7, ज्ञान-विज्ञान योग।
- [3] गीता के विभिन्न हिन्दी भावार्थ एवं टीका-ग्रन्थ।
- [4] भारतीय दर्शन एवं वेदान्त संबंधी मानक ग्रन्थ।
- [5] भगवद्गीता के दार्शनिक एवं आध्यात्मिक अध्ययन से संबंधित शोध-साहित्य।